तीर्थंकर महावीर और आधुनिक युग में शिक्षा का महत्व

—डॉ॰ कामता प्रसाद जैन—

"किं जानासि न वीतरागमखिलत्रैलोक्य चूडामणिं,
किं तद्धर्म समाश्रितं न भवता किं वा न लोको जडः।
मिथ्यादृग्भिरसज्जनैर पटुभि किंचित्कृता पद्रवात्,
यत्कर्माजन हेतुमस्थिरतया बाधां मनो मन्यसे ॥"

—श्री पद्मनन्दि।

हे मन! तुम क्या पूरे तीनों लोक में चूड़ामणि के समान श्रेष्ठ एवं वीतराग जिनको नहीं जानते हो? क्या तुमने वीतराग कथित धर्म का आश्रय नहीं लिया है? क्या जन समूह जड़ अर्थात् अज्ञानी नहीं? जिससे कि तुम मिथ्या-दृष्टि एवं अज्ञानी पुरुषों के द्वारा किये गये थोड़े-से भी उपद्रव से विचलित होकर बाधा समझते हो जो कि कर्मास्रव का कारण है।"

साम्प्रत लोक के लिए आचार्य श्री की उपरोक्त वाणी एक युग चेता भविष्य वाणी से कम नहीं है। औरों की बात तो दूर रही, स्वयं जैनों को लीजिए तो उनमें भी वीतराग जिनेन्द्र—चाहे वह भ० ऋषभ पहले तीर्थंकर हो

अथवा अंतिम तीर्थङ्कर भ. महावीर– को सही मान में जानने और माननेवाले कितने हैं ? कितने हैं एसे युग प्रभाव के साथ समाचारको नियमित पढ़नेके समान वीतराग वाणी को पढ़ते हो ? दुनिया के लोग आशावादी हैं वे भोग लिप्सा में अन्ध होकर भोग सामग्री बढ़ाना ही जीवन का ध्येय मान बैठे हैं। भौतिक उन्नति करना ही आज के वैज्ञानिकों का चरम लक्ष्य है। वे आत्मा और उसकी अनन्त शक्ति से अनभिज्ञ हैं। यही कारण है कि वे राष्ट्रवाद के चक्कर में फंसकर अपने शांत पडोसियों पर भी आक्रमण करने की धृष्टता करते हैं। उनका इस उपद्रव से विचलित होने की आवश्यकता नहीं परंतु आश्चर्य है कि आज अध्यात्मवादी भारत के निवासी भी इस उपद्रवों से भय भीत हो रहे हैं। आत्म बल जगाने की सुध बिसार। नहीं सभी भौतिकता की ओर कदम बढ़ा रहे हैं। ऐसी भयंकर स्थितिमें वीतराग प्रभु और वीतराग विज्ञानता को जानने और मानने की अतीव आवश्यकता है। जिनेंद्र प्रभु और जिनेंद्र वाणी का सच्चा ज्ञान ही मानव का जीवन समय में सही मार्ग सुझाता और सफल बनाता है। तभी तो आचार्य जिनेंद्र की जय का घोष करते हैं।

"जयति जिनो धृतिधनुषामिषुमाला भवति योगियोद्धानाम् ।
यद्वाक्शरणा मन्यपि मोहरिपु प्रहृतये तीक्ष्णा ॥"

'जिन भगवान् की वाणी धीरतारूपी धनुष को धारण करने वाले योगिजन रूपी योद्धाओं के लिए बाण पंक्ति के

समान होती है तथा जिसकी वह वाणी स्याद्वादी ओर भी मोहरूपी शत्रु को पार करने के लिए तीक्ष्ण तलवार का काम करती है वह जिन भगवान् जयवन्त होवें।

क्या उनका आदर्श लोक हितकर है ?

महावीर जयन्ती जैसे त्यौहार हम अपने पूर्वजों के आदर्श जीवन की पुण्य स्मृति में ही मनाते हैं। किन्तु इन उत्सवों के अवसरों पर भी हमारे बहुत से भाई धर्मनिन्दा में व्यस्त रहते हैं। उनका हृदय सशंक है वह पूछता है कि क्या महावीर और उनकी शिक्षायें जीवन तथा विकास के सही मार्ग सुझाने में समर्थ हैं ? क्या उनसे इस युग की समस्याओं का हल सम्भव है ? जब कारण पर दौलत अपने देने दान दबोचने का क्रम रखते हैं तब क्या महावीर की अहिंसा हमारी रक्षा कर सकेगी ? हम स्वयं इसका उत्तर कुछ नहीं देना ठीक समझते हैं, क्योंकि इसका उत्तर बड़े २ महापुरुष यही देते हैं कि भ० महावीर का आदर्श जीवन और उनके सिद्धान्त आज भी जीवन में आगे बढ़ने के लिए मार्ग दर्शन करने में समर्थ हैं। भारत के प्रथम माननीय राष्ट्रपति स्व० श्री राजेन्द्र प्रसाद जी ने कहा था कि आज कल दुनिया के लोगों की रुचि और विचार धारा के अनुकूल है और जैसे कि प्रधान मंत्री नेहरू जी ने भी कहा था "कि यदि जैन सिद्धान्तों को हमने मान्यता नहीं दी तो दुनिया का बड़ा अहित होगा। अतः यह और भी आवश्यक हो गया है कि सभी जैन साहित्य को प्रकाश में लाकर जनता के समक्ष पठन पाठन के लिए रक्खा जाय

जिससे कि जन जीवन उसके अनुरूप बन सके।" इसी बात को डॉ० राधाकृष्णन ने निम्न शब्दों में व्यक्त किया था। उन्होंने कहा था कि 'यदि मानवता को विनाश से बचाना है और कल्याण के मार्ग पर चलना है, तो भ० महावीर के सन्देश को और उनके बताये हुए मार्ग को ग्रहण किये बिना कोई रास्ता नहीं है।'

दिवंगत म० गांधी ने मार्मिक शब्दों में कहा था कि "अहिंसातत्व को यदि किसी ने भी अधिक से अधिक विकसित किया था, तो वे महावीर स्वामी थे। मैं आप लोगों से विनती करता हूं कि आप महावीर स्वामी के उपदेशों को पहिचानें, उन पर विचार करें और उनका अनुसरण करें।

भ० महावीर के भक्तों का यह प्रमुख कर्तव्य है कि वे स्वयं उनके सिद्धान्तों का अध्ययन करें और उन्हें जीवन में उतारें— उनके सिद्धांतों को आधुनिक शैली में लोक की प्रत्येक भाषा में प्रकाशित करके फैलावें, जिससे लोक का कल्याण हो। उनमें श्रद्धा करने के लिए यह आवश्यक ही नहीं है, क्योंकि न केवल इस युग के महापुरुषों ने उनकी महत्ता का बखान किया, बल्कि इसलिए भी कि भ० महावीर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी महापुरुष थे।

सर्वज्ञ और सर्वदर्शी जीवन मुक्त परमआत्मा बनने का आदर्श।

भ० महावीर की जीवात्मा ने कभी तीर्थंकर का पद सहज ही नहीं पा लिया था। एक समय था जब उनका जीव

एक शिकारी भील था—पूर्ण हिंसक भी था बहुत। किन्तु उसी जन्म में दर्शन होने से अहिंसा का बीज अपने अंतर में बो लिया। भील सदा था शिकार करते पशुओं का, किन्तु शिकार हो गया उसके अंतर में पशु का — जैन मुनि से उसने जीव दया पालन का व्रत लिया— वह किसी को मारेगा नहीं और निरामिष भोजन करेगा। अहिंसा का यह बिरवा उस भील के हृदय में पनपा परन्तु एक जन्म में उखड़ कर फिर हिंसा का कुठार पड़ गया— अगले जन्म का कुसंस्कार चमक गया तब वह एक भयंकर शेर था— शिकार करना उसका काम था। किन्तु धर्म मिटता नहीं— अहिंसा के बिरवा की जड़ फिर हरी हो गई। शेर को मुनि के दर्शन हुए और अहिंसक वह बन गया। आज जैसे अमेरिका में टायगर नाम की सिंहनी जीव दया पालक शाकाहारी बनी थी वैसे ही वह शेर भी पूर्ण अहिंसक बना था।

आदि तीर्थंकर भ० ऋषभ अथवा वृषभ से भी बहुत पहले भ० महावीर के जीव ने अहिंसा धर्म की साधना प्रारम्भ की थी। आदि भगवान् का तो वह पोता हुआ था। उपरान्त उत्थान-पतन की भूल-भुलैया में भ्रमण कर शेर हुआ था फिर उसने आत्मोत्कर्ष का प्रयास प्रारम्भ किया। अच्छे बीज का फल भी अच्छा होता है आम बोने पर आम ही मिलता है अहिंसा का बीज बोया था उसका पुण्य पुण्य चक्रवर्ती जैसी विभूति में परिणत हुआ किन्तु महावीर

के बीच को आगे बढ़ाना था—उनके हृदय में आत्म बोध का द्वार खुल चुका था जिसमें सम्यक्त्व की सुगंधि आ रही थी। त्याग का भाव आत्मरता में चमक रहा था। वह राज्यजाल में नहीं फंसे। उनकी सम्पत्ति जीव कल्याण के लिए थी और उनका समय और शक्ति अहिंसा के विकास में लगी थी। राग द्वेष से निर्लिप्त रहनेकी आत्मस्वतन्त्र भावना और समानता का भाव जाग रहा थी मैत्री और करुणा उनके अन्दर व्याप्त थी। वह जिस दिन चक्रवर्ती हो गए परन्तु स्वभाव शान्त। छः खंड भूमि पर अहिंसा का साम्राज्य स्थापित होने पर विजय की यात्रा पर निकले निस्पृही सब पुरुष अहिंसक और न आगे बढ़ स्वतन्त्र होकर अहिंसा संस्कृति के उपासक बन जाते। विश्वमित्र भाव मैत्री और कारुण्य की पुण्य धारा बहाकर लौटे तो वह राजत्व का ऐश्वर्य काटने लगा। बन्धन भार से मुक्त होकर वह साधु हो गए। कम पूर ना प ही अब धम धूर बन गया। उनकी भगवान के पादमूल में बैठकर उनके जीवन तीर्थंकर बनने की कला का परिचायक-उस कलाके विकासमें कुछ ऐसा आनंद कारणोंका कदम दीपक से ऐसा चमकाया कि उनको तीर्थंकर होने देर न लगी। स्वर्ग के भोग विलास में भी वह आत्म रमी रहे। आत्मा स्वच्छ था। शरीर भी स्वस्थ। स्वर्ण के संसर्ग से पाषाण चमकता ही है। आखिर उस जीव ने जीव न अपने अंतर को ऐसा मांजा कि राग द्वेष परक हिंसा की गंध भी उसमें न रहा। सहज आर्जवता के भाव में भीम के जीव को

साक्षपुरुष बना लिया। अन्य जो बड़े बनना चाहते हैं उन्हें साधना और श्रमकी अग्निमें तपकर अपनेको समर्थ बनाना ही उपादेय है। गुदगुदी से कोई बड़ा नहीं बनता— बड़े बनने के लिए तो अहिंसा का मार्ग है—त्याग का पथ है। महावीर ने जीव ने प्यार बनकर अपने को महान् बनाया।

महावीर जन्म से ही महान् थे। उनकी आत्मा भी महान् था और शरीर भी महान्, सुन्दर और बलवान। देखा जाता कि उनके भी शरीर नाड़ियोंमें श्वेतरक्तकी धारा-वन्ती दूध जैसा श्वेत शोणित और प्रेमपूर्ण रक्त। क्योंकि वह साकार मातृ-सम्पन्नता की दया मूर्ति थे। और इनकी ही वर्षा तो उनके जन्म होने के पहले से ही हो चली थी— कुण्डग्राम ऐश्वर्य धाम हो गया। नातृवंशी क्षत्रियों के अधिनायक सिद्धार्थ और रानी त्रिशला प्रियकारिणी के सौभाग्य की कोई सीमा। नहीं चन्द्रसुरूपा यशोदानी ई० पू० ५९९ में त्रिशला ने जो पुत्र जना वह वर्द्धमान कहलाया और अपने कार्यों के कारण महावीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

वर्द्धमान के जन्म से त्रिशला नगर की वृद्धि भी मानो बढ़ गई। लोक में खुशी की लहर दौड़ गई। मनुष्य ही नहीं देवता भी दर्शन करने के लिए दौड़कर आए। बड़ा उत्सव मनाया उन्होंने। हिमालय के दो सन्त भी अपनी समाधि भंग करके आकाश से उड़कर कुण्डग्राम आये थे— योग जो था। और आकाश से दर्शन करते हुए उनकी

शङ्कायें दूर हो गई। संयम और विनय में शान्त नम्रता और वात्सल्य समुज्ज्वल मनस्विनी भावना की।

बालक महावीर ने आठ वर्ष के होते ही जीवन को संयम में जोड़ने का संकल्प किया। उन्होंने किसी को पीड़ा न पहुंचाने और सबके साथ मैत्री और करुणा का व्यवहार करने का नियम लिया। सदा सच और मीठे वचन बोलेंगे। बिना दूसरों के अधिकार और सम्पत्ति का अपहरण नहीं करेंगे। ब्रह्मचर्य में निःशङ्क रहेंगे। परिग्रह का पाठ नहीं बांधेंगे। संग्रह करना पाप है। क्योंकि बालक महावीर को आत्मा और शरीर के भेद का भान था। वह अपनी आत्मा में मगन थे।

उनके बालसाथी सभी वर्ग के थे—सबके साथ उनका समभाव था। निडर और निर्भय वह ऐसे थे कि एक काले विषधर का पराभव कर दिखाया। माता उन्होंने काल को जीतने की योग्यता थी। प्रभावशाली इतने थे कि उसके बच्चों को निवारण करने के लिए बड़ी से बड़ी जोखिम उठा लेते। राजा का हाथी मस्त होकर प्रजा को कष्ट देने लगा तो राजकुमार वर्द्धमान तुरन्त खाली हाथ मोर्चे पर गये और प्रेम से हाथी को वश में कर लिया। काम के हाथी को भी तो उन्होंने नहीं सी उमर में वश किया था।

माता ने कहा—'वत्स! तुम युवा हुए, विवाह करो। कलिङ्ग की राजकुमारी यशोदा तुम्हारे ही अनुरूप है।' सुनते ही राजकुमार का माथा ठनका। विवाह क्यों? क्या संसार से कामुकता और हिंसा मिट गई? तीर्थंकर

विकसित कर लिया था। मौन रहकर भी वह अपने आंत-
रिक मनोबल शान्ति प्रभाव से जन जन का मन्त्रावत
विषमताओं का अन्त करने में समर्थ हुए थे। उनके शरीर
से ऐसा तेजोमई प्रभामण्डल उद्भूत हुआ करता कि उनकी
छाया में जो भी आता वह वैर और विरोध को भूल जाता
था। चण्डकौशिक जैसे भयंकर नाग के आतंक से लोगों
की रास्ता बन्द हो गई थी। वह सचमुच ही चण्डकौशिक
नाग जाति का भयंकर भरमार हो आयाँ और मार्गों प
र पथ चलता ही था। भ० महावीर ने सुना तो वह उसके
रास्ते में ही गये चण्डकौशिक ने उनपर आक्रमण किये परन्तु
महावीर शान्त थे नाग के आक्रमण विफल गए उसने वैर
भाव छोड़ दिया। जन जन के लिए मार्ग बंद था वह खुल
गया। जनता ने प्रेम की समता की अजय शक्ति को
पहिचाना। इसी प्रकार भ० महावीर ने म्लेच्छों की अनार्य
पल्ली में जाकर उनके जातिगत द्वेष भाव का मन उनके
अत्याचारों को समता से सहन करके किया था। भ०
पार्श्वनाथ ने पहले ही उड़ बंग आदि देशों के अनार्यों को
अहिंसा धर्म का अनुयायी बना लिया था। भ० महावीर
ने मानव समता के इस महती कार्य में चार चांद लगा
दिये।

एक बार साधक महावीर कौशाम्बी के बाहर यमुना
तट पर ध्यान में लीन खड़े हुए थे तभी उन्होंने देखा-
मानव मानव में जन्मतः कोई अन्तर नहीं। किंतु बलवान
समर्थ दीन हीन असमर्थों को क्रीत दास बनाकर उनको

मनमाने त्रास दे यह मानवता नहीं। जब भ० महावीर ने कौशाम्बी में आकर किसी भी उच्च जातीय व्यक्ति से यहां आहार नहीं लिया बल्कि एक कौशाम्बी के हाथ से भोजन लिया जिसकी सराहना देवों ने भी की। कौशाम्बीनरेश भी प्रभावित हुए— उन्होंने अपने राज्य में दास प्रथा का अन्त कर दिया। धीरे २ इस नृशंस विषमता का अन्त सारे भारत से हो गया। मौर्यकाल में जब यूनानी राजदूत मेगास्थनीज भारत में आया तो उस समय कोई दास देखने को न मिला। सभी मुक्तमानव थे। किसी को दास न बनाने का नियम बना दिया गया था। ("The law ordains that no one among them shall, under any circumstances be a slave")

इस प्रकार अपनी बारह वर्षों की मौन साधना में महावीर ने न केवल अपने अन्तर को मांजने के लिए बड़े बड़े उपवास और तप किये बल्कि साधना के मार्ग में जहां जहां तक जो विषमता दिखाई दी उसका अन्त भी अपनी साधना करनी से कर दिखाया। मनोवैज्ञानिक मूलमार्ग, भ० महावीर ने एक महती सामाजिक क्रांति को सहज में संपन्न कर दिखाया। यह उनके साधक जीवन की महान् सफलता और मानवता की बड़ी देन है।

बारह वर्ष का तपस्या काल पूरा हो चला था कि महावीर की साधना सफल हुई। जृम्भिका ग्राम के पास ऋजुकूला नदी के तट पर वह शाल वृक्ष की छाया में बैठ

हुए शुक्ल ध्यान के निमग्न आलोक में मोह घनघाती उनको शरीर आसक्ति के बंधन तड़ तड़ करके टूट गए पुद्गल का आवरण उनके आत्म स्वभाव पर घना हुआ था वह दूर हो गया मोह का परदा बिल्कुल हट गया- वह केवल ज्ञानी हो गए। शरीर ने भी अनुकूलता का प्रकट करके आसन से चार अंगुल ऊपर अधर रहकर मानो प्रसन्नता व्यक्त की कि महावीर जीवन मुक्त परमात्मा हो गए है।

जिनको धीरज वाम में भ० महावीर की आत्मा में ज्योति सा धर्म का जो बीज बोया था वह १२ वर्षों की साधना के पश्चात सफल हुआ। वह आत्मा से परमात्मा बने- नर से नारायण हुए। उनका परमात्मा बनने का अर्थ। जीवन इस साधक लिए मुक्ति के मार्ग को स्पष्ट दर्शन कराता है।

साधक महावीर अब तीर्थंकर महावीर हो गए- श्रमण और समदर्शी परम आत्मा। उनका आदर्श बताता है कि परमात्मा दूर नहीं, उनके जीवात्मा में अन्दर विद्यमान है।

इन्द्र स्वर्ग लोक से ज्ञान कल्याणक का उत्सव मनाने आया और तीर्थंकर प्रभु से धर्म चक्र प्रवर्तन के लिए विहार करने की प्रार्थना की। किन्तु व्यर्थ। भगवान मौन थे उनकी वाणी न खिरी। इन्द्र ने ज्ञान नेत्र से दुनियां का देखा तो उसे हिंसा से भरा पाया। मानव धर्म के नाम पर निरीह निरपराध पशुओं को अग्नि वेदी पर होम कर उनके साथ अन्याय कर रहा था पाखंड लोगों के मान

में ही इस मिथ्यात्वी धर्म को पूजना बढ़ा था। सर्वत्र असन्तोष और अन्याय! बुद्ध ने यह देखा कि इन्द्रभूति गौतम इन रक्त रंजित यज्ञों का नेता है। वह स्वयं सशङ्क है अतः इन्द्रभूति को भगवान के समक्ष लाया।

इन्द्रभूति के आते ही भगवान की वाणी खिरने लगी। घट घट के ज्ञाता भ० महावीर ने इन्द्रभूति की मर्म वेदना का ज्ञान कर कहा—

इन्द्रभूति! अपने को जानो और पहिचानो। आत्मा के अस्तित्व में शंका न करो। जिसे 'अहं' का बोध होता है वही तो चेतन्य आत्मा है। वह दर्शन ज्ञान गुण का शाश्वत द्रव्य है जड़ वस्तु शरीर से निराला है। वही तुझ में और वैसा ही आत्मा उन पशुओं में भी है जिनको तुम यज्ञ में होमते हो।

इन्द्रभूति ने जो यह सुना तो यह उसे बोध हुआ कि पञ्चभूत पदार्थों से शरीर बनता है आत्मा ... शरीर नहीं- वह अजर अमर है तो क्या पशु को यज्ञ में होमना अनुचित है?

इन्द्रभूति प्रबुद्ध हुए और भ० महावीर के पहले शिष्य हुए। उनके दोनों भाई अग्निभूति और वायुभूति भी अपने शिष्यों सहित भ० महावीर के शिष्य हो गए। परिणामतः पशु-यज्ञ की कुप्रथा का अन्त हुआ और पशुओं को भी अभय मिला। सब ओर अहिंसा का सुखद वातावरण अवतरित हुआ।

भ० वीर का विश्वव्यापी प्रभाव

भ० महावीर की धर्म सभाएं राजगिरि के निकट विपुल आदि पर्वतों पर अनेक बार हुई। मगधनरेश श्रेणिक बिम्बसार उनके अनन्य भक्त थे।

एक दफा राजगिरि में भ० गौतम बुद्ध भी ठहरे हुए थे। उस समय उनके शिष्यों ने आकर कहा कि निर्ग्रन्थ (जैनों) के ज्ञातृवंशी तीर्थंकर ज्ञात पुत्र महावीर हैं, जो ऋषिगिरि पर तपस्या करते हैं। वे तीर्थंकर सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं। (मज्झिमनिकाय १।०९)

बौद्ध ग्रंथ दीघनिकाय में भी भ० महावीर को सर्वमान्य तत्ववेत्ता लिखा है।

भ० महावीर के महान् व्यक्तित्व की प्रसिद्धि दूर देशों में फैल गई। सारे भारत में उन्होंने विहार और प्रचार किया था।

ईरान के राजकुमार अरदराक (आर्द्रक) ने सुना तो वह भारत आये और भ० का उपदेशामृत पान करके शिष्य हो गए। ईरान में सम्भवतः उन्होंने ही अहिंसा धर्म का प्रचार किया। भ० महावीर के अनुयायियों ने भी मनुष्यों

प्रथा का अन्त कर दिया। शाहंशाह महान ने अशोक की तरह ही धर्मभ्रम दूर करके अहिंसा धर्म का प्रचार किया। ईरान में अहिंसा की एक परम्परा ही चल पड़ी— अब्दुल्ला अन्सारी के सूफी कट्टर अहिंसावादी हो हुए। उनमें से एक रहस्यवादी सूफी कवि जीव रक्षा के लिए अपने शिष्य वालिका से कहते हैं —

> ' आहिस्ता बेरम बल्कि मा बेरम।
> जेरे कदम तो हजार जाँ अस्त !! '

' अहिंसा से चलो, अहिंसा चलो हाँ नहीं तो और भी अच्छा है, क्योंकि तेरे पैर के नीचे हजारों जानदार प्राणी हैं।'

— मैं महावीर ने अहिंसा के नियममें यही तो उपदेश दिया था।'

एक दूसरा कवि अहिंसा धर्मको नहीं पालने से कितना कष्ट उठाना पड़ता है यह एक बकरे से कहलाता है —

> 'गुनोदा अस्त कि कस्साब गोसफन्द गुफ्त
> दरां जमां कि गिरफ्तस बन्तेग तेज बुराद।
> सजाए हर खास्व-मो-खार कि खुर्दम दाद,
> कसे कि पहलूए चरब ख्वुरद ने खरीदु ॥'

कवि कहता है कि एक बार मैंने सुना, कि बकरीकी गरदन पर जब कसाई ने तेज छुरी का वार करना चाहा तो बकरी ने उससे कहा भाई मैं तो सब रहा हूं कि हरी घास और हरे पौधे खानेकी सजा मुझे क्या मिल रही है? अरे, मेरी गरदन ही कटी जा रही है। अब बेरसाव

जांय जरा सोचो तो उस व्यक्ति का क्या हाल होगा जो मेरा मांस खायगा ?'

जैन लोग हरित वनस्पति का न खाने का भी ध्यान रखते हैं। ईरानी कवि 'बकरी की दया को उस कोटि की न होने का कटु परिणाम उसका अकाल मरण बताता है जो ठीक है अब भला जो मांस खाते हैं उनका क्या हाल होगा ?

भ० महावीर की अहिंसा का सन्देश ईरान से आगे फिलस्तीन मिश्र और यूनान तक पहुंचा था। फिलस्तीन के Essen एस्सेन नाम कट्टर अहिंसा धर्मी थे। मिश्र में भी शाकाहार का आदर किया गया और यूनान में पिथागोरस ने भारतीय अहिंसा के सन्देश को फैलाया, उस सन् ८१ ई० में मधुकच्छ के श्रमणाचार्य ने अथेन्स जाकर अपना बलिदान किया था। सारांश यह कि भ० महावीर के अहिंसा सिद्धान्त की मान्यता उस समय सारे संसार में व्याप्त हो गई थी यह उनकी महानता का स्वयं एक बड़ा प्रमाण है।

वीर वाणी और विश्वशांति।

भ० महावीर जब विहार करके पावापुर पहुंचे तो उन्होंने अन्तिम उपदेश यही दिया कि अहिंसा ही परम धर्म है। मेरे धर्म में श्रमण हैं। वे पूर्व, पश्चिम, उत्तर दक्षिण सभी दिशाओं में गांवों और नगरों का संदेश लेकर जावें। तीर्थंकर ने बताया कि तीर्थंकर की वाणी तुम्हारा मार्ग दर्शन करेगी। और यह हम देख चुके हैं कि

भ० महावीर की इस शिक्षा के अनुरूप [illegible]
के बाहर दूर २ देशों तक गये थे और [illegible]
विश्व में "अहिंसा साम्राज्य स्थापित" [illegible]
म जरथुस्त्र ने अहिंसा का उपदेश दिया [illegible]
अहिंसा पर जोर दिया फिलस्तीन [illegible]
ने अहिंसा को जीवन में उतारा। [illegible]
अहिंसा की धारा जो बहाई वह बराबर [illegible]
जैन साधु प्राचीन काल में पहुंचे थे [illegible]
पूर्ण प्रकाशगामी हुई थी।

इस प्रकार यह —
था अहिंसा के मुख्य स्तम्भ थे
बल्कि विश्व में शान्ति
अहिंसा के द्वारा विश्व में शांति

मानवीय सघर्ष —
मन की विडम्बना है
है जिसके कारण वे परस्पर
महावीर ने इस कमजोरी
अनेकान्त का सिद्धांत दिया
अपने मत का आग्रह न करे
है एक व्यक्ति उसके एक
दूसरा दूसरे पक्ष का।
दूसरे के मत का भी —
स्थान ही नहीं रहता।

का आदर्श रखने में कभी भी झगड़ा होने की सम्भावना नहीं।

इसके साथ ही भ० महावीर ने मानव २ के बीच समता के लिए परस्पर दयामय व्यवहार करने और संयम पालन का उपदेश दिया उन्होंने कहा था कि तुम बाहरी—दुश्मनों से क्यों लड़ते हो, अगर लड़ना है तो अपने अन्तर में शत्रुओं से लड़ो। क्रोध, मान माया लोभ आदि दुष्प्रवृत्तियों को जीतो। मन, वचन और काय का सम-व्यवहार रखो तो तुम महान् बनोगे और तुम्हारा कोई शत्रु न होगा। भ० महावीर के व्यक्तित्व में अहिंसा और समता पूर्ण रूप से विकसित होते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उनके चारों तरफ मीलों तक शांति का साम्राज्य छा रहता है जन्मजात विरोधी जीव भी अपना बैर भूल जाते हैं और परस्पर प्रेम से रहते हैं। प्रत्येक व्यक्ति अपनी आन्तरिक अहिंसा की इस महान शक्ति को जगा सकने में समर्थ है

वैशाली के राजकुमार के सेनापति सिंहभद्र ने भ० महावीर से पूछा कि प्रभु संसार में ऐसे क्रूर लोगों की बहुलता है जो विवेक को नहीं जानते। सत्य और असत्य को नहीं पहचानते, उनका जीवन का धर्म पशुओं की बर्बरता से कम नहीं। वे लोग अहिंसा को क्या जानें ऐसे भयंकर लोगों के संसार में एक अहिंसक रहे तो कैसे रहे? कदाचित ऐसा ही कोई गण से आततायी हमारे देश पर चढ़ आये तो हम क्या करें? उत्तर स्पष्ट था — कि

अहिंसा का आचरण करो। जब हिंसक अपनी हिंसा नहीं छोड़ता तो अहिंसक अपनी अहिंसा क्यों छोड़े? जीवन क्षण भंगुर है और जीवन में सबसे उत्तम धर्म पालन, अजर, अमर है फिर मरने का भय क्या? अहिंसक विवेकी निडर और निशंक होता है। उसकी अहिंसा शत्रु को मित्र बना सकती है कदाचित् कोई लोभ से अथवा किसी के देश या सम्पत्ति को लूटने पर ही तुला हो तो भी अहिंसक वीर का अहिंसा के द्वारा ही उसका प्रतिकार करना उचित है हाथ पैर न कर उसे अर्पित करना ही उचित है परन्तु उसके अन्याय पूर्ण आदेश को कभी नहीं मानना चाहिए। भ० महावीर की वाणी में यही विशेषता है कि वह शत्रु को भी मित्र बनाने का रास्ता दिखाती है। इसके लिए सच्ची वीरता निर्भयता और त्याग, तप, अपेक्षित है इस युग में महात्मा गांधी ने अहिंसा की अजेय शक्ति का पाठ जैन कवि रायचन्द्र जी से सीखा था और भारत वासियों में अहिंसा का ऐसा वीर भाव जगाया कि भारत स्वतन्त्र होकर रहा। वास्तव में यदि यह शक्ति भारत में नहीं होती तो किसीका साहस न होता कि उसकी ओर आंख उठाकर भी देखता।

सेनापति सिंहभद्रने आप फिर प्रश्न किया कि भगवन् अहिंसाका मार्ग जो आपने बताया वह निःसंदेह महान् है, जीवमात्र के लिए कल्याणकारी है। किन्तु दुर्भाग्य से यदि किसी देश या राष्ट्र में ऐसे महान् अहिंसक वीर न हों तो क्या किया जाय जिस तरह से आततायी आक्रमणकारी देश,

का सामना किया जाय ? और उ ा को उत्तर पाया उसमें भी अहिंसा की गंध आ रही थी। जीव की हत्या करना या मारना सरासर हिंसा है। युद्ध में हिंसा ही होती है परन्तु मसारम स्वार्थी हिंसकों की कमी नहीं है। इसलिए अपना और अपने धर्म देश की रक्षा करना मानव का धर्म है हिंसा संकल्प करके अर्थात् जान बूझकर करना किसी के लिए भी विधेय नहीं है। परन्तु जीवन व्यवहार का च ान के लिए घर गृहस्थी में आरम्भ उद्योग धंधों के द्वारा अर्थोपार्जन में उद्योगी और जीवन को सन्तिम एवं धर्मानुकूल बनाये रखने के लिए अनाय विरोधी शक्ति के समक्ष र बचाव के लिए विरोधी हिंसा करनी होती है परन्तु इसमें भी मानव को ध्यान रखना आवश्यक है कि कम से कम हिंसा हो मानव का लक्ष्य सदैव भी अहिंसक ही रहे। वैशाली के युद्ध में महाशिला और रथमूसल नामक अस्त्रों का प्रयोग किया गया था— पहले पत्थर के द्वारा शिलाओं का प्रहार करके शत्रु का नाश किया जाता और दूसरा अस्त्र एक प्रकार का तथा रथ था जिसमें न घोड़े जुते थे और न कोई चलाने वाला सामने बैठता था उसमें ऐसी मशीन लगी होती थी कि जिससे वह अपने आप चलता था और मूसलों का प्रहार करके शत्रुओं की पंक्ति में खलबली मचा देता था। जब उज्जैन के किले को शत्रुओं ने घेर लिया था मालवीयों ने एक शस्त्रों का प्रयोग किया जिसका आकार गर्धव मुख जैसा था और जिससे एक भयंकर आवाज सी निकलती

दी कि जिसको सुनकर शत्रु बेहोश हो जाते थे और आखिर पकड़ लिये जाते थे। तात्पर्य यह है कि भ० महावीर की अहिंसा ने देश के राष्ट्रीय जीवन को भी एक नई राह दी थी। शत्रु को उसकी गल्ती का पाठ पढ़ाना भी अहिंसक वीर अपना कर्तव्य समझते थे। परन्तु घृणा और विरोध का भाव नहीं रखते थे युद्ध क्षेत्र में भी उनके भाव अहिंसा में लीन रहते थे। सेनापति चामुण्डराय एक महान् योद्धा थे जिन्होंने चौरासी युद्ध लड़े परन्तु उसी समय वह ६८ शास्त्रों पुरुष चरित्र भी लिखते थे। उनके मन अन्तरात्मा में अहिंसा बसी थी। ऐसे ही सोम क्षत्रियों के राज्य में श्री आभू थे। आभू जैन श्रावक थे जब राजा राजधानी में नहीं गये तब शत्रु ने अणहिलपुर पट्टन पर आक्रमण कर दिया। आभू ने बहादुरी से लड़कर शत्रु को मार भगाया परन्तु जब सामायिक करने का समय आता तो युद्ध क्षेत्र में हाथी के हौदे में बैठे हुए ध्यान करने लगजाते शत्रुओं के मारों में धबड़ाते न थे। यह विशेषता थी भ० महावीर के अहिंसक वीरों की। आजभी हम इस वीर भाव को सारे विश्व में जगा देना है शत्रुता का अंत हो जावे और विश्व में शान्ति स्थापित हो क्योंकि वैर से वैर कभी नहीं मिटता मैत्री और करुणा से ही मानव के मन में, घर में, नगर में, देश में और विश्व में शान्ति और सुख की धारा बहती है। अतः आज प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्य को पहचाने और शांति एवं अहिंसा और मैत्री एवं करुणा को अपने जीवन में

महावीर-वचनामृत

समस्त जीवों को अपना अपना जीवन प्रिय है, सुख प्रिय है, वे दुख नहीं चाहते वध नहीं चाहते, सब जीना ही इच्छा करते हैं। अतएव सब जीवों की रक्षा करनी चाहिए।

सब जीव जीना चाहते हैं, कोई भी मरना नहीं चाहता अतएव निर्ग्रन्थ मुनि भयंकर प्राणिवध का परित्याग करते हैं।

अपने अथवा दूसरों के लिए क्रोध अथवा भय से, दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला असत्य वचन न स्वयं बोलना चाहिये और न दूसरों से बुलवाना चाहिए।

संरक्षक ज्ञातपुत्र महावीर ने मात्र वस्त्र आदि पदार्थों को ही परिग्रह नहीं कहा, बल्कि वास्तविक परिग्रह है मूर्च्छा आसक्ति, यह महर्षि का वचन है।

जो मनुष्य सुंदर और प्रिय भोगों को पाकर भी उनकी ओर से पीठ फेर लेता है सामने आए हुए भोगों का परित्याग कर देता है वही त्यागी कहलाता है। वस्त्र, गंध, अलङ्कार, स्त्री, शयन आदि वस्तुओं का जो परवशता के कारण उपभोग नहीं करता उसे त्यागी नहीं कहते।

विविध वस्तुओं से परिपूर्ण समस्त विश्व भी यदि किसी एक मनुष्य को दे दिया जाय तो उससे भी उसकी तृप्ति नहीं होगी। मनुष्य की तृष्णा को पूरी करना कितना कठिन है!

कैलाश पर्वत के समान सोने चाँदी के असंख्य पर्वत भी लोभी मनुष्य की इच्छा पूरी नहीं कर सकते उसकी इच्छा आकाश के समान अनन्त है।

शान्ति से क्रोध को जीतें नम्रता से अभिमान जीतें सरलता से माया को जीतें, और संतोष से लोभ को जीतें।

सब प्रथम अपने आप का दमन करना चाहिए यही सबसे कठिन काम है, अपने आप को दमन करने वाला इस लोक में तथा परलोक में सुखी होता है।

हे पुरुष! तू स्वयं ही अपना मित्र है फिर बाहर किसी मित्र को क्यों खोज करता है? तू अपने आप का निग्रह कर इससे तू समस्त दुखों से मुक्त हो जायगा।

जब तक वृद्धावस्था पीड़ा नहीं पहुचाती, व्याधि नहीं बढ़ती और इन्द्रियाँ क्षीण नहीं होती तब तक धर्म का आचरण करना चाहिए।

जागो! तुम क्यों नहीं समझते हो? मृत्यु के बाद ज्ञान होना दुर्लभ है। बीती हुई रात्रियाँ लौट कर नहीं आतीं, और फिर से मनुष्य जन्म पाना सुलभ नहीं है।

प्रमादी पुरुष धन द्वारा न इस लोक में अपनी रक्षा कर सकता है, न परलोक में। फिर भी धन के असीम मोह से जैसे दीपक बुझ जाने पर मनुष्य मार्ग को ठीक २ नहीं देख सकता उसी प्रकार प्रमादी मनुष्य न्याय-मार्ग को देखते हुए भी नहीं देखता।